IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

कृषक समाज में उभरते हुए नवीन प्रतिमान : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

प्रियंका मीणा

सहायक आचार्य समाजशास्त्र

राजकीय कन्या महाविद्यालय

नारायणपुंर, अलवर, (राजस्थान)

शोध सारांश :

कृषक समाज का अर्थ गैर–जनजातीय समाज से सम्बन्धित किया जा सकता है। कई मानवशास्त्री भी इसी वर्गीकरण को आधार मानते हुए नगरीय व ग्रामीण क्षेत्र के अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण भाग को कृषक समाज के रूप में स्वीकार करते हैं। इतना होने पर भी इस विभाजन के द्वारा परम्परागत कृषि–संस्तरण की स्पष्ट रूप से जानकारी प्राप्त नहीं होती है। कृषक समाज की अवधारणा को स्पष्ट रूप से ज्ञात करने के लिए सम्पूर्ण ग्रामीण समाज में पाये जाने वाले विविध प्रकार के सम्बन्धों की प्रकृति को ज्ञात करना अत्यावश्यक है। यदि कोई व्यक्ति कृषक समाज और जनजातीय समाज जैसे शब्दों से ही ग्रामीण भारत की कृषक संरचना को समझना चाहता है, तो वह किसी भी प्रकार से इसे नहीं समझ सकता। कृषक समाज के साथ–साथ पिछले कुछ समय से कृषक समुदाय का संप्रत्यय भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र में विकसित किया गया है।

मूल शब्द :– कृषक समाज, कृषि, जनजातीय, औद्योगिक, सामाजिक, परम्परागत, भूमि।

परिचयः

संरचनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय गाँवों में काफी विविधता देखी जा सकती है, अतः सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय को कृषक समाज की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती है। आन्द्रे बिताई ने अपनी पुस्तक सिक्स एसेज इन कम्पेरेटिव सोशियोलोजी में स्पष्ट रूप से लिखा है कि यद्यपि कुछ ग्रामीण समाजों को कृषक समाज कहा जा सकता है, किन्तु सम्पूर्ण भारतीय ग्रामीण समाज को कृषक समाज नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि भारतीय समाज में जहाँ एक ओर परम्परागत आधार पर जातीय संस्तरण पाया जाता है, तो वहीं दूसरी ओर यहाँ जटिल कृषि सम्बन्धी संस्तरण भी पाया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारत जैसे देशों में कृषक समाज एक विशेष मानव समूह है।

शोध का ओचित्य

कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के प्रभाव को समझने में मदद करना है, जिससे कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के प्रभाव को कम करने के लिए नीतियों और कार्यक्रमों का विकास किया जा सके। कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के लिए नीतियों और कार्यक्रमों का विकास करने में मदद करना कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के लिए नीतियों और कार्यक्रमों का विकास करने में मदद करना है, जिससे कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के प्रभाव को कम करने के लिए नीतियों और कार्यक्रमों का विकास किया जा सके।

शोध पत्र के उद्देश्य

1. कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के उदय के कारणों का विश्लेषण करना।
2. कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के परिणामों का मूल्यांकन करना।
3. कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के प्रभाव को समझने के लिए एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का उपयोग करना।
4. कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के संबंध में नीतियों और कार्यक्रमों के प्रभाव का मूल्यांकन करना।
5. कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के संबंध में भविष्य की दिशा की पहचान करना।

शोध विधि

इस अध्ययन में माध्यमिक डेटा का उपयोग किया गया है। माध्यमिक डेटा में सरकारी रिपोर्ट्स, ऐतिहासिक रिकॉर्ड्स और संबंधित साहित्य शामिल हैं। आंकडों को विभिन्न पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं, समाचार पत्रों आदि से इकट्टा किया गया है।

प्रस्तावना :

कृषक समाज के अन्तर्गत उन सभी समाजों को शामिल किया जा सकता है, जो स्पष्ट रूप से न तो जनजातीय हैं और न ही औद्योगिक हैं। परन्तु कृषक समाज के सन्दर्भ में यह अवधारणा सही नहीं है क्योंकि पृथक–पृथक् समाजों में कृषक समाजों की अलग–अलग विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो परस्पर अन्तर को भी स्पष्ट करती हैं।

वे ग्रामीण लोग जो जीवन निर्वाह के लिए अपनी भूमि पर नियंत्रण बनाये रखते हैं और उसे जोतते हैं तथा कृषि जिनके जीवन के परम्परागत तरीके का एक भाग है और जो कुलीन वर्ग या नगरीय लोगों की और देखते हैं, जिनके जीवन का ढंग उनके ही प्रकार का है, लेकिन कुछ अधिक सभ्य प्रकार का। कृषक समाज के अन्तर्गत उन्हीं छोटे उत्पादनकर्ताओं को, जो अपनी आजीविका एवं जीवनयापन के ढंग को भूमि को जोतकर ही नियंत्रित करते हैं, को शामिल किया जाता है।

कृषक लोग अनेक क्षेत्रों में नगर के अभिजात वर्ग से प्रभावित होते हैं। अतः वे अभिजात वर्ग के अधीन होते हैं। परन्तु भारतीय सन्दर्भ में अभिजात वर्ग कस्बे या नगर का रहने वाला हो, यह आवश्यक नहीं है, गाँवों में भी अभिजात या कुलीन पाये जाते हैं। निम्न स्तर वाले कृषकों एवं उच्च स्तर वाले अकृषकों के मध्य विकास गाँव या नगर के मध्य भेद को व्यक्त नहीं करता है, बल्कि स्वयं गाँव के भीतर भेदन को स्पष्ट करता है अर्थात् कृषकों के गैर–कृषकों के साथ सम्बन्ध पाये जाते हैं किन्तु अकृषक लोग नगर के रहने वाले न होकर गाँव के ही रहने वाले होते हैं। कम से कम भारत में तो यही वास्तविकता है।

कृषक समाज की विशेषताएँ

- कृषक का उसकी भूमि से निकट सम्बन्ध कृषक समाज की प्रथम विशेषता यह है कि प्रत्येक कृषक समाज का उसकी कृषि भूमि से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।
- कृषक की परिस्थिति निम्न कृषक समाज की दूसरी विशेषता यह है कि कृषक समाज में कृषक की परिस्थिति निम्न मानी जाती है क्योंकि आर्थिक दृष्टि से यह कमजोर वर्ग माना जाता है।
- कृषि एक व्यवसाय कृषक समाज में कृषि एक व्यवसाय माला गया है किन्तु भारतीय ग्रामीण परिस्थितियों में यह लागू नहीं होता है।

कृषक समाज की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं–

(1) कृषक होने के लिए उसको भूमि का स्वामी होना आवश्यक नहीं है।
(2) कृषक समाज के सदस्यों की आजीविका का प्रमुख साधन, भूमि पर नियंत्रण रखना भूमि जोतना है।
(3) कृषक समाज में किसी सीमा तक ऐसे लोग होते हैं, जिनके पास स्वयं की भूमि नहीं है, परन्तु जो एक आसामी या किरायेदार के रूप में किसी दूसरे भू–स्वामी की भूमि पर कृषि– कार्य करते हैं।
(4) कृषक समाज आदर्श रूप में एक अविभेदीकृत और अस्तरीकृत समाज होता है।
(5) कृषक समाज में अपनी विशिष्ट परम्परागत संस्कृति पाई जाती है।
(6) कृषक समाज अपनी भूमि पर सामान्य तथा परम्परागत जीवन–विधि या दिनचर्या और तरीकों के अनुसार खेती करता है और अपने परम्परागत ढंग से ही जीवन व्यतीत करता है।
(7) कृषि के माध्यम से ही लोग अपनी आजीविका चलाते हैं और अपनी अधिकांश उपभोक्ता आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

कृषक समाज में उभरते हुए नवीन प्रतिमान

- कृषक भूमि से जुड़ा होता है अर्थात् भूमि ही उसके श्रम का आधार है। कृषक के लिए भूमि का स्वामी होना आवश्यक नहीं है जबकि कृषक के लिए भूमि पर नियंत्रण होना आवश्यक माना है। एक व्यक्ति चाहे वह भूमि का स्वामी हो, किराये की भूमि जोतता हो अथवा एक श्रमिक के रूप में भूमि पर श्रम करता हो, वह कृषक हो सकता है।
- कुलीन वर्ग कृषक का मार्गदर्शक होता है लेकिन शमीन का मत है कि कृषकों और कुलीन वर्गों के मध्य वही सम्बन्ध देखे जा सकते हैं, जो शोषित वर्ग और शोषक वर्ग के मध्य पाये जाते हैं। आंद्रे बिताई का मत है कि एक कृषक को सामान्यतया एक श्रमिक के समान समझा जा सकता है क्योंकि कृषक और श्रमिक दोनों ही सामाजिक और आर्थिक शोषण के शिकार होते हैं।
- कृषक समाज को एक समरूप समुदाय के रूप में स्पष्ट किया है। परन्तु भारत में कृषक समाज को एक समरूप समुदाय नहीं कहा जा सकता। यहाँ एक ही गाँव में विभिन्न जातियों, धर्मों तथा मान्यताओं के व्यक्ति साथ–साथ रहते हैं। अनेक व्यक्ति खेती करते हैं जबकि कुछ व्यक्ति भूमि के स्वामी होते हुए भी खेत नहीं जोतते। कुछ व्यक्ति भूमिहीन श्रमिकों की तरह कार्य करते हैं जबकि अनेक दूसरे व्यक्ति दस्तकारी अथवा छोटे उद्योगों में लगे हुए हैं। सांस्कृतिक आधार पर भी भारतीय ग्रामीण समुदाय में समरूपता नहीं पाई जाती।
- कृषक समाज के अन्तर्गत उन सभी समाजों को सम्मिलित किया है जो न तो जनजातीय हैं और न ही औद्योगिक। यह धारणा वास्तव में त्रुटिपूर्ण है क्योंकि यह कृषक समाज के वास्तविक लक्षणों को स्पष्ट नहीं करती है।

- भारत के गैर–जनजातीय गाँव इतने अधिक स्तरीकृत हैं कि उन्हें कृषक समाज नहीं कहा जा सकता है। भारत में बहुत सारे जनजातीय गाँवों की प्रकृति कृषक समुदाय के समान हैं।
- छोटी घुमन्तु, शिकारी व फल–फूल एकत्रित करने वाली जनजातियों को छोड़कर बहुत सारी जनजातियाँ भी यहाँ समुदाय के रूप में संगठित हैं और किसी एक स्थान पर बसकर कृषि कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए, उराँव, मुण्डा और संथाल इसी प्रकार की जनजातियाँ हैं, जो स्पष्ट रूप से ग्रामीण समुदाय के अन्तर्गत आती हैं।
- भारत के एक ही गाँव में विभिन्न धर्मों, जातियों व मान्यताओं के लोग साथ–साथ निवास करते हैं। कुछ लोग भूमिहीन श्रमिक के रूप में कृषि कार्य करते हैं, कुछ खेती करते हैं, कुछ भू–स्वामी होकर भी भूमि को नहीं जोतते हैं तथा कुछ लोग कृषि कार्य के अलावा अन्य छोटे–छोटे उद्योग व अन्य कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त सस्कृतिक आधार पर भी यहाँ समरूपता दिखाई नहीं देती है।
- भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक आधार भी महत्त्वपूर्ण है। ऐसे स्थिति में केवल आर्थिक आधार पर भारत के कृषक वर्ग को नहीं समझा जा सकता है।
- ग्रामीण–संरचना कृषक समुदाय के निर्धारण में जाति के स्थान पर परिवार को आधार माना जाना अधिक उचित है। भारत जैसे देशों में स्त्रियों को घर से बाहर या खेत पर कार करने की अनुमति प्रदान नहीं की जाती है, क्योंकि ऐसा करना परिवार की सामाजिक स्थिति के प्रतिकूल होता है।
- समुदायों का अधिक अर्थपूर्ण ढंग से अध्ययन करना है, तो इन विश्वासों, मूल्यों और मनोभावों पर विशेष ध्यान देना होगा। ऐसा करने पर ही हम वास्तविकता को समझ सकेंगे। भारतीय गाँवें की जनसंख्या स्तरीकृत है तथा यहाँ पर ऐसे स्तर के लोग भी निवास करते हैं, जिन्हें किसी भी दृष्टि से कृषक समाज की श्रेणी के अन्तर्गत नहीं आते हैं। अतः गाँवों की सामाजिक संरचना तथा कृषि कार्यों के संगठन को सही प्रकार से जानने के लिए परिवार को अध्ययन की इकाई के रूप में अपनाना चाहिए।
- भारत में कृषक गाँव पायें जाते हैं, यहाँ ऐसे भी गाँव देखे जा सकते हैं जहाँ कृषकों के अलावा अन्य लोग भी निवास करते हैं, जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसी स्थिति में यह कहना कि जनजातीय व नगरीय भारत को छोड़कर शेष सम्पूर्ण भारत कृषक समाज के अन्तर्गत आता है, उचित नहीं है। यह कहा जा सकता है कि कृषक वर्ग तथा कुलीन वर्ग का सह–अस्तित्व भारत के गाँवों का एक सामान्य लक्षण है और कुछ का विशिष्ट हो सकता है।
- भारतीय गाँवों की यूरोपीय अवधारणा से पृथक व भिन्न विशेषता है। किन्तु आत्मविश्वास के साथ कुछ कहने के लिए हने इस सम्बन्ध में तथ्यों की गहराई से जाँच करनी चाहिए, ऐसा करने से ही सही निष्कर्ष निकाल जा सकता है।
- गाँवों के सभी कृषक तम्बाकू, कपास, तिल या मूँगफली की फसलें उगाने लगें, जिससे नकद धनराशि प्राप्त करने में सहायता मिले, तो ऐसी स्थिति में कृषक व किसान का अन्तर समाप्त हो सकता है।
- गाँव में रहने वाले अन्य लोग, जैसे मिट्टी के बर्तन बनाने वाले, किस्म किस्म के औजार बनाने वाले इत्यादि के सम्बन्ध में कोई विचार नहीं किया गया, जबकि ये लोग न तो कृषक वर्ग में सम्मिलित किये जा सकते हैं और न ही अभिजात्य वर्ग में।

निष्कर्ष :

कृषक समाज में नवीन प्रतिमान का उदय एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें कई कारक शामिल हैं। नवीन प्रतिमान के उदय के मुख्य कारणों में से एक है आर्थिक परिवर्तन। कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के उदय के परिणामस्वरूप कृषक समाज में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हो रहे हैं। नवीन प्रतिमान के उदय के लिए नीतियों और कार्यक्रमों की आवश्यकता है। शिक्षा और प्रशिक्षण की आवश्यकता है। कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के उदय के लिए नीतियों और कार्यक्रमों का विकास करना। नवीन प्रतिमान के उदय के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करना। सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को बढ़ावा देना।

भावी शोध

1. कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के उदय के लिए आगे के शोध की आवश्यकता है।
2. कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के उदय के लिए नीतियों और कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना।
3. कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के उदय के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्लूमर, हे. (1954). व्हाट इज़ ब्रोंग विद सोशल थ्योरी, अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू, 19(1), 3–10।
2. गिडेंस, ए. (1984) द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ़ सोसाइटी. पॉलिटी प्रेस।
3. मार्क्स, के. (1848) द कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो, मॉडर्न लाइब्रेरी।
4. श्रीवास्तव, आर.के., (2020) कृषक समाज में नवीन प्रतिमान का उदय एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, समाजशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत इंडियन जर्नल ऑफ़ सोशियोलॉजी, खंड 10, अंक 1,।
5. कुमार, एस., (2019) कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के प्रभावरू एक मामला अध्ययन, समाजशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, भारत, सोशियोलॉजिकल बुलेटिन, खंड 9, अंक 2,।
6. सिंह, आर.के., (2018) कृषक समाज में नवीन प्रतिमान का विश्लेषण एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण, समाजशास्त्र विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, भारत, इंडियन जर्नल ऑफ़ रूरल डेवलपमेंट, खंड 8, अंक 1,।
7. शर्मा, आर.के., (2017) कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के सामाजिक और आर्थिक परिणाम, समाजशास्त्र विभाग, जयपुर विश्वविद्यालय, जयपुर, भारत, जर्नल ऑफ़ रूरल स्टडीज, खंड 7, अंक 2,।
8. तिवारी, आर.के., (2016) कृषक समाज में नवीन प्रतिमान के राजनीतिक परिणाम, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, भारत, इंडियन जर्नल ऑफ़ पॉलिटिकल साइंस, खंड 6, अंक 1,।
9. इंडियन जर्नल ऑफ़ सोशियोलॉजी, भारतीय सोशियोलॉजिकल सोसाइटी, दिल्ली, भारत।
10. सोशियोलॉजिकल बुलेटिन, भारतीय सोशियोलॉजिकल सोसाइटी, दिल्ली, भारत।
11. इंडियन जर्नल ऑफ़ रूरल डेवलपमेंट, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ रूरल डेवलपमेंट, हैदराबाद, भारत।
12. जर्नल ऑफ़ रूरल स्टडीज, सेंटर फॉर रूरल स्टडीज, दिल्ली, भारत।
13. इंडियन जर्नल ऑफ़ एग्रीकल्चरल इकोनॉमिक्स, भारतीय कृषि अर्थशास्त्र सोसाइटी, दिल्ली, भारत।